

- (grants-in-aid), जो सामान्य या किसी विशेष कार्य के लिये भी हो सकता है।
- (ii) दान तथा परिषद/पंचायत की सम्पत्तियों से प्राप्त होने वाला किराया या उनके बेचने से प्राप्त होने वाला धन।
 - (iii) पुलों, नावों, मनोरंजन, मेलों, हाटों इत्यादि पर लगायी गई चुंगी, फीस या कर।
 - (iv) परिषद/पंचायत को दिया जाने वाला भूमि राजस्व का हिस्सा।
 - (v) कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, पंजाब, मणिपुर, महाराष्ट्र आदि ने ज़िला परिषदों को यह अधिकार दिया है कि वे किसी भी ऐसे विषय पर कर लगा सकती हैं जिन पर कर लगाने का अधिकार निम्न स्तर की पंचायतों को प्राप्त है।
 - (vi) अपनी सम्पत्ति की जमानत पर लिया गया कर्ज़।
 - (vii) पंचायत समितियों या किसी भी स्थानीय निकायों द्वारा दिया गया योगदान/सहायता।

इस बात का भी प्रावधान है कि राज्य सरकार प्रत्येक पाँच वर्ष के उपरांत एक वित्त आयोग की स्थापना करेगी जो इन संस्थानों की वित्तीय स्थिति का निरीक्षण करेगा और इनकी वित्तीय स्थिति को मज़बूत करने के लिये सुझाव भी देगा। आयोग राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली सहायता की मात्र तथा संसाधनों के परस्पर बंटवारे का भी निरीक्षण करेगा।

ज़िला नियोजन समिति (District Planning Committee)

कृपया आगे नगरीय स्थानीय प्रशासन के चैप्टर को देखें।

पंचायती राज पर नियंत्रण (State Control Over Panchayati Raj)

1992 में जब संविधान का 73वाँ संशोधन पारित किया गया, यह आशा की जाती थी कि राज्य स्थानीय स्तर पर स्वशासन संस्थानों को अपनी सत्ता विकेन्द्रित करेंगे। उद्देश्य यह था कि लोकतंत्र को जन-जन के स्तर तक पहुँचाया जाये ताकि उस स्तर पर लोग अपने कार्यों का प्रबन्ध स्वयं कर सकें। केवल लोग ही यह जानते हैं कि उनके लिये क्या अच्छा है और क्या करने की आवश्यकता है। उन्हें अपने स्तर पर ही उसे करने का अधिकार होना चाहिये। इसका उद्देश्य केवल यह नहीं था कि लोगों को निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हो, अपितु उनको अपने आप को शासित करने की सत्ता तथा क्षमता प्रदान की जाये। यदि हमारे संघीय संविधान के अधीन राज्यों को स्वायत्ता प्राप्त है तो यही स्वायत्ता नगरों, उपनगरों, ज़िला तथा ग्रामों के स्तर तक भी पहुँचाई जानी चाहिये। इसलिये अनिवार्य था कि स्थानीय विषयों पर राज्य का नियंत्रण कम किया जाये। 1992 के उपरांत राज्यों ने अपनी विधि में इस संदर्भ में क्या-क्या परिवर्तन किये हैं जो उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति करते हों? इसका निर्णय उनके कानूनों का निरीक्षण करके किया जा सकता है, जो इस प्रकार है :

पंचायती राज संस्थानों सम्बन्धी कानूनों में संशोधन करते समय, राज्यों ने इन संस्थानों पर नियंत्रण कई प्रकार से अपने हाथ में रखा है। राज्यों के नियंत्रण का रूप लगभग सभी राज्यों में एक जैसा है, अन्तर केवल विस्तार का है :—

1. राज्य सरकार द्वारा इस संदर्भ में जो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं, उनको ग्राम ब्लॉक तथा ज़िलों पंचायतों के प्रशासनिक कर्तव्यों के क्रियान्वयन पर निरीक्षण तथा परीक्षण करने की सामान्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उनको यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे इन सभी पंचायतों के कार्यालयों, स्थानों तथा उन द्वारा किये जाने वाले कार्यों का परीक्षण कर सकते हैं। उनको यह भी अधिकार होता है कि वह सम्बन्धित पंचायत की पुस्तकों तथा फाइल (Records) का परीक्षण करें और उसको निर्देशन दें।

प्रशासन की शक्ति प्रशासन
 2. सभी स्तरों की पंचायतों (ग्राम, ब्लॉक या क्षेत्र या अंचल और ज़िला) के प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्तियाँ भी राज्य सरकार द्वारा की जाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि अधीनस्थ अधिकारियों (subordinate positions) के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उन पर नियंत्रण स्थानीय प्रशासन के हाथ में होता है। उदाहरणतया, असम में पंचायतों (ज़िला, अंचलक, ग्राम) के ग्रेड IV तथा ग्रेड IV के कर्मचारियों की नियुक्तियाँ ज़िला चयन समिति (District Selection Committee) की सिफारिशों पर ज़िला परिषद के सर्वोच्च कार्यकारी (Chief Executive Officer) द्वारा की जाती है। गुजरात में पंचायत लोक सेवा चयन बोर्ड (Panchayat Service Selection Board) की स्थापना की गई है। राजस्थान में अधीनस्थ पदों (ग्राम सेवक तथा सेविकायें, अधिक स्कूल अध्यापक तथा कलर्क आदि) के लिये एक भिन्न लोक सेवा स्थापित की गई है जो से राजस्थान पंचायत समिति तथा ज़िला परिषद लोक सेवा (Rajasthan Panchayat Samiti and Zila Parishad Service) कहते हैं; जिसमें जिले के आधार पर नियुक्तियाँ की जाती हैं। इसी उच्च पदों के अधिकारी राज्य लोक सेवा या अखिल भारतीय लोक सेवा के सदस्य होते जिन पर राज्य सरकारों का नियंत्रण होता है। सभी स्तरों के अधिकारियों की सेवा की शर्तें जैसे वेतनमान, अनुशासन नियम आदि, राज्य सरकारें ही निर्धारित करती हैं। इसी प्रकार अधिकारियों को निलम्बित करने, पद से हटाने आदि की शक्ति भी राज्य सरकारों के पास ही होती है।

3. कुछ परिस्थितियों में और कानून में निश्चित की गई कुछ हालतों में राज्य सरकारों ने इसकी शक्ति भी अपने हाथ में रखी है कि वे सभी स्तरों की पंचायतों के निर्वाचित अध्यक्षों तथा अधिकारियों (जैसे ग्राम पंचायत के सरपंच तथा उपसरपंच, पंचायत समिति के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष आदि) को ज़िला परिषद के चेयरमैन तथा डिप्टी चेयरमैन) को उनके पद से हटा सकती है।

4. सबसे महत्वपूर्ण शक्ति जो सभी स्तरों की पंचायतों के सम्बन्ध में राज्य सरकारों के थ में है, वह है सभी स्तरों की पंचायतों को भंग करने की शक्ति। इसमें संदेह नहीं कि जिन सरकारों के आधार पर इनको भंग किया जा सकता है उन्हें कानून में निश्चित कर दिया गया और यह कार्यवाही करने से पूर्व सरकार के लिये अनिवार्य है कि वह उस पंचायत को छोड़ देता और स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करे, परन्तु फिर भी इस विषय पर नियम निर्णय करने और कार्यवाही करने का अधिकार राज्य सरकार के पास ही होता है।

5. राज्य सरकार किसी भी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन द्वारा पारित किये गये प्रस्ताव या देश को रोक सकती है या रद्द कर सकती है, यदि वह कानून के अनुरूप पारित नहीं किया गया, या वह स्थानीय प्रशासन की सत्ता में नहीं है या उस द्वारा स्थानीय प्रशासन सत्ता का उत्तम्योग कर रहा है या फिर वह यदि लोकहित के विपरीत है।

6. यदि राज्य सरकार को यह प्रतीत होता है कि किसी स्तर के स्थानीय प्रशासन अथवा अधिकारियों के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष ने अपने कार्य करते अथवा कर्तव्य को निभाते समय कोई चूक की तौली सरकार कार्यवाही कर सकती है और कह सकती है कि उस कार्य को एक निश्चित रूप से गये समय में पूरा किया जाये या चूक को सुधारा जाये।

7. सभी राज्यों में यह अनिवार्य है कि सभी स्तरों की पंचायतों प्रति वर्ष अपनी—अपनी प्रशासनिक रिपोर्ट राज्य सरकार को भेजें।

8. राज्य सरकार को यह शक्ति भी प्राप्त है कि वह सभी स्तरों की पंचायतों के लिये खाते लेखा (Financial accounts) बनाने की प्रणाली तथा आकार निश्चित कर सकती है।

पंचायतों के लिये अनिवार्य है कि वे सरकार द्वारा नियुक्त किये गये अधिकारी से अपना सम्बन्धी परीक्षण (Audit) करवायें।

9. सभी राज्य सरकारों ने यह शक्ति अपने हाथ में रखी है कि पंचायती राज सम्बन्धी कानून को ठीक प्रकार से लागू करने के लिये वे नियम बना सकती हैं।

10. राज्य पंचायतों को ऐसे निर्देशन देने की शक्ति रखते हैं जो पंचायतों पर बाध्य होंगे। उदाहरणतया, अरुणाचल प्रदेश में यह व्यवस्था है कि सरकार के लिये ग्राम पंचायतों, अंचल समितियों तथा ज़िला परिषदों को राज्य तथा राष्ट्रीय नीतियों सम्बन्धी विषयों पर निर्देशन देना विधिवत् होगा और ये निर्देशन उन पर बाध्य होंगे। कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, बिहार, उड़ीसा तथा सिक्किम में भी ऐसी व्यवस्था है।

11. असम, बिहार, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, मणिपुर, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में सरकार को यह अधिकार है कि वह विभिन्न स्तरों की पंचायतों के मामलों तथा उनके अधिकारियों के विरुद्ध छानबीन भी करा सकती है।

12. विभिन्न स्तरों की पंचायतों के पारस्परिक झगड़ों या पंचायतों तथा अन्य स्थानीय संस्थानों या सरकारी विभागों के बीच झगड़ों का समाधान करने का अधिकार भी राज्य सरकार को प्राप्त होता है।

13. लगभग सभी राज्यों में सरकार को यह अधिकार होता है कि वह किसी भी स्तर की पंचायत को कोई भी ऐसा कार्य सौंप सकती है जो उसकी कार्यकारी शक्ति के अंतर्गत आता है।

14. हरियाणा में पंचायत समितियों के कार्यों में समन्वय उत्पन्न करने तथा उनका निरीक्षण करने और परामर्श देने की सामान्य शक्ति भी राज्य सरकार को प्राप्त है। इसमें निर्देशन देने की शक्ति, उनकी विकास योजनाओं को संगठित तथा समन्वित करने, दो या अधिक पंचायत समितियों के साझे कार्यक्रमों, योजनाओं तथा स्कीमों को क्रियान्वित कराने की शक्ति तथा किसी भी विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में शक्ति राज्य को प्राप्त है।

15. सभी राज्य सरकारों को यह शक्ति प्राप्त है कि वे ज़िला नियोजन समिति नियुक्त कर सकें जो सभी स्तरों की पंचायतों की विकास योजनाओं को संगठित करे और समूये ज़िले के लिये विकास योजना का ड्राफ्ट (draft) तैयार करें।

16. ग्राम पंचायतों, तालुक पंचायतों तथा ज़िला पंचायतों के द्वारा लगाये जाने वाले करों, फीस, प्रभार, चुंगी आदि की न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा निर्धारित करने की शक्ति भी राज्य सरकारों के पास होती है। हिमाचल प्रदेश में यह व्यवस्था है कि राज्य सरकार नियम बनाकर पंचायती राज विधान के अधीन करों के लगाने, मूल्यांकन करने, वसूली करने तथा करों के बंटवारे को नियंत्रित करने के लिये नियम बना सकती है।

17. राज्य सरकारों द्वारा सहायता अनुदान साधारणतया राज्य वित्तीय आयोगों की सिफारिशों पर आधारित होती है। परन्तु कर्नाटक तथा केरल जैसे राज्यों में पंचायतों को विशेष योजनाओं, कार्यक्रमों तथा कार्यों को लागू करने के लिये अतिरिक्त अनुदान देने के लिये सरकारें ही शर्त निर्धारित करती हैं।

18. कर्नाटक में यह व्यवस्था है कि यदि किसी कारणवश किसी पंचायत का गठन नहीं किया जा सकता, अथवा किसी चुनाव में दो तिहाई से कम सदस्य ही चुन पाते हैं तो डिप्टी कमिश्नर पंचायत का कार्य चलाने के लिये छः महीने के लिये एक प्रशासक या प्रशासनिक समिति की नियुक्ति करेगा।

पंचायती राज संस्थानों की समस्याएँ (Problems of Panchayati Raj Institutions)

संविधान में 73वाँ संशोधन हुए और राज्यों द्वारा अनुकूलन विधान पास किये हुए लगभग तृष्ण दशक बीत गया है। पंचायती राज संस्थान इससे पूर्व भी थे और तब से कार्य कर रहे हैं। अतः उनके क्रियाकलाप पर दृष्टि डालना और उनके समुख आ रही समस्याओं को जानना आवश्यक है।

1. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पंचायती संस्थानों को शासन की शक्तिशाली तथा इन्सेमील संस्थान बनाने के लिये शासक वर्ग में पारदर्शिता और इच्छाशक्ति का अभाव है। जिन उद्देश्यों को लेकर गाँधीजी तथा अन्य नेताओं ने पंचायती संस्थानों का समर्थन किया था वे थे— राज्य की सत्ता को विकेन्द्रित करना, विकास तथा नियोजन प्रक्रिया को निम्न स्तर से आरम्भ करना और ग्रामीण समुदायों को स्थानीय स्वशासन की स्वायत्तता तथा स्वशासित इकाइयाँ बनाना। प्रारम्भिक उल्लासोन्माद के उपरांत ये संस्थान उपेक्षा तथा सत्ता प्रलोभन के शिकार बन गये। राजीव गाँधी ने प्रयास किया कि वह इस अनुसंधान के पीछे की भावना को फिर से जागृत करे, परन्तु वह अधिक समय सत्ता में नहीं रह पाये। इसमें संदेह नहीं कि यह संस्थान सभी राज्यों में स्थापित किये गये हैं परन्तु व्यवहार में यह उन आदर्शों पर पूरे नहीं उतरते जिन पर इनकी स्थापना की गई। राज्य सरकारों ने इनको अपने पांवों पर खड़ा करने का प्रयास नहीं किया ताकि वे स्वस्थ संस्थानों के रूप में विकसित हो सकें। यही कारण है कि ग्राम विकास में इनका योगदान संतोषजनक नहीं रहा। कई राज्यों में तो इन पंचायतों को लम्बे समय तक निलम्बित रखा गया। उदाहरणतया, 2001 में विहार तथा जम्मू व कश्मीर में पंचायतों के चुनाव करवाये गये, परन्तु बीस वर्ष के उपरान्त बिहार में तो पंचायतों के चुनाव करवाने के चुनाव करवाये गये, परन्तु बीस वर्ष के उपरान्त बिहार में तो पंचायतों के चुनाव करवाने के लिये राज्य सरकार को न्यायपालिका के हस्तक्षेप द्वारा विवश किया गया। ये एक मात्र है उदाहरण नहीं है। अधिक सरकारी हस्तक्षेप, अपर्याप्त धन, राज्य नियंत्रण की अधिकता जैसे कई दोष तो इसलिए उत्पन्न हुए न तो राजनीतिक शासक वर्ग और न नौकरशाही ने ही इन संस्थानों को अपने उद्देश्यों में सफल होने में सहायता करने की कोई इच्छा दिखाई है।

2. दूसरी बड़ी समस्या भारत के ग्रामों का सामाजिक वातावरण है। ग्रामीण/समाज न केवल लढ़िवादी है अपितु जाति प्रथा में जकड़ा हुआ भी। बहुत सारे राज्यों के ग्रामों में अपर्याप्त अवसंरचना (infrastructure) तथा जानकारी है और अशिक्षा की भरमार है। परिणाम यह है कि लोगों में अवसरों तथा अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागरूकता नहीं है। ग्रामीण भारत की संरचना ऐसी है कि उसमें प्रबल जाति ही पंचायत पर हावी होती है। इसीको दूर करने के लिये विधि निर्माताओं ने सभी स्तरों की पंचायतों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा स्त्रियों के लिये आरक्षण की व्यवस्था की। यह एक अच्छा कदम है, इससे इन संस्थानों में कमजोर वर्गों की भागीदारी बड़ी है, परन्तु जाति की पकड़ अभी समाप्त नहीं हुई।

3. पंचायतों पर धनी तथा शक्तिशाली लोगों का हावी होना एक अन्य समस्या है। यह प्रायः देखा गया है कि ग्राम सरपंच/प्रधान के पद पर धनी तथा प्रभावशाली व्यक्तियों का कब्ज़ा रहता है। इससे प्रतिनिधि संस्थानों का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। उदाहरणतया, तमिलनाडु के कई ज़िलों में पंचायत अध्यक्ष के पद की नीलामी की प्रथा देखी गई है। चुनाव में वोट डालने से पूर्व ही ग्राम पंचायतें एक भारी रकम के बदले अपने अध्यक्षों तथा वार्ड सदस्यों को चुन लेती हैं। दिखावे के तौर पर वह पैसा विकास कार्यों के लिये लिया जाता है, परन्तु पैसा ले लेने पर ग्राम समितियाँ, जिन पर थीवर (Thevars) तथा अन्य उच्च जातियाँ हावी होती हैं,

सबसे अधिक बोली देने वाले को आमंत्रित करती हैं और उसको "निर्वाचित" घोषित कर देती है। केवल उसी को ही नामांकन पत्र दाखिल करने दिया जाता है। ग्राम पंचायत के पदों के बेचने की प्रथा से रोष उत्पन्न हुआ है। इससे जन स्तर पर लोकतंत्र की भावना का ही हन्त हुआ है। वचनबद्ध (Committed) तथा महत्त्वकांक्षी उम्मीदवारों को नामांकन पत्र दाखिल करने वाले नहीं दिया जाता क्योंकि वे ग्राम के असामाजिक तत्वों की हिंसात्मक पिछ्ट (backlash) से डरते हैं। "तथाकथित सर्वसम्मति से चुने" ग्राम प्रधान या तो स्वभावगत अपराधी होते हैं और या सूदखोर (money lenders)। दूसरे ठेकेदारों जैसे धनी होते हैं।⁷⁶

4. बहुत सारे राज्यों में पंचायती चुनावों के अवसर पर हिंसात्मक घटनायें एक साधारण व्यक्ति घायल हुए या मारे गये।⁷⁷ बिहार ही हिंसा का एक मात्र उदाहरण नहीं है, ऐसा कई राज्यों में होता है। जब जिसकी लाठी उसकी भैंस का नियम लागू होता है, तो पंचायतों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे कार्यात्मक दृष्टि से प्रभावी होंगी या साधारण व्यक्ति के कल्याण के लिये कार्य करेंगी। पंचायतों को सत्ता हथियाने तथा धन इकट्ठा करने का साधन और उच्च राजनीति की ओर सीढ़ी समझा गया है। अतः हिंसा को सत्ता हथियाने का साधन समझा जाता है। परन्तु यह केवल पंचायती राज संस्थानों के चुनावों की ही विशेषता नहीं है, हिंसा का प्रयोग संसदीय तथा विधान सभाओं के चुनावों में भी होने लगा है। इससे राजनीति का अपराधीकरण होने लगा है।

5. भ्रष्टाचार एक अन्य रोग है जिसने पंचायती राज संस्थानों के स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित किया है। जो निर्वाचित होकर इन संस्थानों का सदस्य बनते हैं, उनके व्यवहार का मानक स्तर अधिक ऊँचा नहीं होता। यहाँ तक कि जो सरकारी अधिकारी उनसे जुड़े होते हैं, वे भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं होते। जो धन इन संस्थानों को विकास कार्यक्रमों के लिये दिया जाता है, उसमें से अधिकतर भ्रष्ट व्यक्तियों की जेबों में चला जाता है। यहाँ राजस्थान का एक उदाहरण देना उचित होगा। अप्रैल 2001 में, जनावड नामक ग्राम में पंचायत को कहा गया कि जन सुनवाई में वह अपना लेखा पेश करे। यह देखा गया कि 65 लाख रुपये में से 45 लाख रुपया खुर्दबुर्द कर दिया गया और 35 काल्पनिक कार्यक्रम केवल कागज पर ही मंजूर किये गये।⁷⁸ यह बहुत साधारण है परन्तु केवल पंचायती संस्थानों तक ही सीमित नहीं। जिस सामाजिक तथा राजनीतिक पर्यावरण में पंचायतें कार्य करती हैं, उसका प्रभाव उन पर पड़ता है। परिणाम यह हुआ है कि नियोजित विकास प्रक्रिया के 50 वर्ष उपरान्त भी आज ग्रामीण भारत में निर्धनता तथा पिछड़ापन भरा पड़ा है।

6. समानान्तर अभिकरण (agencies) पंचायती राज संस्थानों को कमज़ोर बनाते हैं। इन संस्थानों के पीछे एक उद्देश्य यह था कि ग्रामीण समाज को परिवर्तित करने के लिये विकास कार्यक्रमों में इनको जनता की भागीदारी का माध्यम बनाया जाये। यह देखा गया कि विकास कार्यक्रमों को नौकरशाही द्वारा लागू करने से ग्रामों की निर्धनता तथा पिछड़ेपन पर कोई देखने योग्य प्रभाव नहीं पड़ा। अतः पंचायती राज व्यवस्था को सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अभिन अंग के तौर पर आरम्भ किया गया। परन्तु जिन उद्देश्यों के लिये इन संस्थानों को स्थापित किया गया था, सरकार इनका प्रयोग उन उद्देश्यों के लिये न कर पाई। न ही नौकरशाही की जकड़ कम हुई और न ही विकास कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व उनको सौंपा गया। सरकार ने ग्रामीण विकास कार्यों के लिये समानान्तर तथा विकल्पित ढाँचे स्थापित किये, जैसे ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण (District Rural Development Agency—DRDA) को ज़मग्र ग्राम विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme—IRDP), स्वरोज़गार के

लिये ग्रामीण युवा प्रशिक्षण (Training of Rural Youth for Self-Employment—TRYSEM), राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme—NREP) आदि कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। चूँकि ज़िला स्तर पर निर्धनता-निवारण (DRDA) ही है अतः केन्द्रीय सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय का अधिकतर धन इसी अभिकरण (DRDA) को ही प्राप्त होता है। कहा जाता है कि इस समय केन्द्रीय सरकार से लगभग 9000 से 10,000 करोड़ रुपया पंचायती राज संस्थानों की अपेक्षा ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरणों (DRDAs) के पास हैं। इस मंत्रालय को 2001—2002 के बजट से लगभग 12000 करोड़ रुपये दिये गये, जिनमें से पंचायती राज संस्थानों के प्रबन्ध क्षेत्र में केवल 5000 करोड़ रुपये ही आये थे।⁷⁹ संसद की प्रवर समितियों ने इस व्यवस्था की कई बार आलोचना की है। जब पंचायतों की स्थापना की गई है, तो फिर ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण किस लिये? एल० सी० जैन, जो एक गाँधी अनुयायी हैं और जो संविधान के प्रचलन का पुनार्वलोकन करने वाले राष्ट्रीय आयोग के विकेन्द्रीकरण तथा हस्तांतरीकरण पर परामर्श पैनल के अध्यक्ष थे, लिखते हैं, “ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण (DRDAs) वे प्रशासनिक इकाइयाँ हैं जिनकी स्थापना निर्धनता-निवारण कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता देने के लिये की गई थी, तब संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थान स्थापित नहीं किये गये थे। परन्तु जब पंचायती राज संस्थानों को, विशेषतया ज़िला पंचायतों को स्थापित कर दिया गया, तो अलग ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण (DRDAs) का औचित्य ही समाप्त हो जाता है। जैसा भी हो उनका पंचायती संस्थानों की स्थापना के बावजूद स्वतंत्र तौर पर बने रहना 73वें संशोधन के उद्देश्य तथा क्षेत्राधिकार के विपरीत लगता है।”⁸⁰

दुख की बात तो यह है कि जब राज्य समानान्तर संस्थायें स्थापित करते हैं तो केन्द्रीय सरकार उनकी आलोचना करती है, परन्तु स्वयं इसको व्यवहार में नहीं अपनाती। अप्रैल 3, 2001 को केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री वैंकय्या नायडू ने समानान्तर संस्थाओं की स्थापना सम्बन्धी शिकायतों का उल्लेख किया। उसने कहा कि ऐसे संगठनों की स्थापना नहीं की जा सकती जो पंचायतों के महत्त्व को कम करें या उनकी शक्तियों को कमज़ोर करें। वह मध्य प्रदेश तथा हरियाणा में “ग्राम सरकारों” तथा “ग्राम विकास समितियों” का उल्लेख कर रहे थे जो समानान्तर स्थानीय स्वशासन के तौर पर कार्य कर रही हैं।⁸¹

सांसदों तथा विधायकों की ज़िला स्तर पर कई ऐसी समितियाँ हैं जिनका परस्पर व्यापन (overlapping) है। कई ऐसे अग्र-बैंक (lead banks) हैं जो पंचायती संस्थानों से बाहर विभिन्न योजनाओं के लिये वित्तीय सहायता देते हैं। इसके अतिरिक्त, कई विभागीय संगठन भी साथ ही साथ कार्य करते हैं। “केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा लागू की जा रही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों तथा योजनाओं की बहुलता के कारण पंचायती राज संगठनों के प्रचलन का क्षेत्र कम हुआ है।”⁸²

7. विकास कार्यक्रमों को लागू करने तथा धनराशि के आबंटन पर नियंत्रण को छोड़ने की इच्छा उच्च स्तरीय राजनीतिक अधिकारियों में दिखाई नहीं देती, साथ ही पंचायती संस्थानों की सत्ता को कमज़ोर करने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। राज्य स्तरीय संगठन पंचायतों राज संस्थानों पर अपनी श्रेष्ठता दिखाने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार इन संस्थानों के सम्बन्धों पर अपनी नेतृत्व करते हैं। सांसद, विधायक तथा अन्य राज्य स्तरीय नेता पंचायती रत्त के सत्ता की सीढ़ी पर उनका स्थान ऊँचा है या तो वे पंचायती संस्थानों पर हावी होने का प्रयास करते हैं और या उनकी सत्ता को कमज़ोर करते हैं।

8. विभिन्न स्तरों की पंचायती संस्थानों की गतिविधियों का समन्वय उत्पन्न करने वाली कोई तर्कसंगत या विवेकपूर्ण व्यवस्था नहीं है। यह कल्पना की गई थी कि प्रत्येक उच्च स्तर अपने निम्न स्तर के कार्य का मार्ग दर्शन भी करेगा और निरीक्षण भी। ग्राम पंचायतों के सरपंचों को ब्लॉक/पंचायत समिति का सदस्य बनाकर; तथा इन समितियों के अध्यक्षों को जिला परिषद में प्रतिनिधित्व देकर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया था। साथ ही सांसदों, विधायकों तथा विधान परिषद के सदस्यों को प्रत्येक स्तर की पंचायत का पदेन (ex-officio) सदस्य बना दिया गया। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि न केवल विभिन्न स्तरों पर समन्वय स्थापित किया जाये अपितु विधायक के ज्ञान तथा अनुभव का लाभ पंचायतों को प्राप्त हो। परन्तु व्यवहार में हुआ यह है कि विधायकों का पंचायतों में उपस्थित होना पंचायती संस्थानों के अस्तित्व को ढाँक लेता है। इससे उनके स्वतंत्र रूप से मुक्त प्रचलन में बाधा आई है।

समन्वय की समस्या का एक अन्य आयाम भी है। पंचायती राज संस्थानों तथा जिला प्रशासन कार्यालयों या सरकार के क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच समन्वय या तालमेल कमज़ोर तथा भिन्नात्मक प्रतीत होता है। पंचायतों के सक्रिय प्रचलन के लिये यह स्थानीय समर्थन व्यवस्था को हल्का कर देता है।

9. पंचायतों को सत्ता तथा वित्त (finance) का हस्तांतरण विधि की भावना के अनुरूप नहीं है। पंचायती संस्थानों पर राज्य का नियंत्रण उतना ही कड़ा है जितना 73वें संशोधन से पूर्व था। इन संस्थानों पर राज्य के नियंत्रण का उल्लेख पहले के पृष्ठों में किया जा चुका है, अतः यहाँ उसको दोहराने की आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकारें किसी भी स्तर की पंचायत को निलम्बित कर सकती हैं, भंग कर सकती हैं, उनके अध्यक्षों को हटा सकती हैं, उनका मुआयना कर सकती हैं, जाँग पड़ताल कर सकती हैं, उनके प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्तियाँ करती हैं, उनकी सेवा की शर्तों को निश्चित करती हैं, धन का आबंटन करती हैं, किसी भी कार्यक्रम या प्रोजेक्ट को रुकवा सकती हैं, आदि। यह नियंत्रण केवल विधि तक ही सीमित नहीं, अपितु व्यवहार में भी लागू किया जाता है। यही कारण है कि जुलाई 2001 में केन्द्रीय सरकार ने राज्यों के पंचायती राज मंत्रियों का एक अधिवेषन दिल्ली में बुलाया ताकि दो महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया जा सके—चुनाव तथा शक्तियों का हस्तांतरण।⁸³ यह 73वें संशोधन के पास होने के इतने वर्ष उपरांत की बात है कि वास्तविक हस्तांतरण अभी भी लागू होना है।

10. हालांकि विधि में यह व्यवस्था की गई है कि यदि किसी भी स्तर की पंचायत को भंग किया जाता है, तो अगली पंचायत को छः महीने के भीतर स्थापित करना अनिवार्य है। यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक स्तर की पंचायत की अवधि पाँच वर्ष है और इसके उपरांत चुनाव कराना अनिवार्य है। परन्तु कई राज्य किसी न किसी कारण को बताकर चुनाव टालते चले जाते हैं। बिहार तथा जम्मू व कश्मीर राज्यों में 23 वर्षों के उपरांत 2001 में पंचायतों के चुनाव करवाये गये। बिहार में तो चुनाव कराने के लिये राज्य सरकार को न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा विवश करना पड़ा। असम, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश में भी कोई न कोई कारण बताकर चुनाव टाले गये। पंजाब ने तो जिला तथा मध्य स्तरीय पंचायतों के चुनावों को टालने के लिये अपने कानून में संशोधन करना भी अनुचित नहीं समझा।⁸⁴

11. पंचायतों के प्रति नौकरशाही का व्यवहार एक अन्य रुकावट है। पहली बात तो यह है कि राज्य अधिकारी पंचायतों के निर्वाचित नेताओं के अधीन कार्य करने के लिये कोई उत्सुकता नहीं दिखाते। पंचायतों को दिये जाने वाले अधिकतर कर्मचारी राज्य केड़ (Cadre) से सम्बन्धित होते हैं। उनकी सेवा की शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती हैं। अतः

वे जाकर पंचायतों के अधीन कार्य करने के इच्छुक नहीं होते। जिनको इच्छा के विपरीत विवश करके भेजा जाता है, वे पंचायतों के सुविधापूर्ण कार्य करने के मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न करते हैं। दूसरी बात यह है कि पंचायती राज संस्थानों के राजनीतिकरण से इनको बहुत हानि हुई है। यह राज्य केडर (Cadre) के निराकृत (discarded) कर्मचारियों को फेंकने (dumping) का तथा अनुभवी जो विभिन्न योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने तथा नियंत्रण रखने के लिये बांधनीय होते हैं, को इन संस्थानों के पास नहीं भेजा जाता।

12. वित्तीय संसाधनों की कमी पंचायती संस्थानों की बड़ी कमज़ोरी है। राज्य वित्तीय आयोग होने के बावजूद भी पंचायती संस्थान धन के अभाव में रहते हैं। कई पंचायतें तो इतने छोटे हैं ताकि कार्य करती हैं कि वे अपनी आय से पर्याप्त धन नहीं जुटा पातीं। कर, फीस, चुंगी आदि लगाने की सम्भावना भी इनके लिये कम होती है क्योंकि भीतरी ग्रामीण प्रदेश तथा इसकी अर्थव्यवस्था बहुत अविकसित है। विकास कार्यक्रमों की माँगें तो बहुत हैं परन्तु संसाधन बहुत कम। इससे निराशा तथा उदासीनता उत्पन्न होती है। इससे पंचायती संस्थान वित्तीय सहायता के लिये राज्य सरकार पर बहुत अधिक निर्भर हो जाते हैं, जिससे उनकी स्वायत्ता कमज़ोर हो जाती है और उनके कार्यक्रमों में अनिश्चितता आ जाती है।

13. ग्राम सभायें उतनी प्रभावकारी सिद्ध नहीं हुई जितनी कि आशा की जाती थी। कई ग्रामों में ग्राम सभायें गतिहीन बनी हुई हैं। परिणाम यह हुआ है कि पंचायतों की जवाबदेही और अपने शासन में जनता की भागीदारी को क्षति पहुँची है।

14. कई राज्यों में पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों तथा उनके अध्यक्षों पर किये गये अध्ययन से पता चलता है कि नेतृत्व का सामाजिक आधार विस्तृत होता जा रहा है। विधान द्वारा पदों के आरक्षण का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि नेतृत्व का एक बड़ा अनुपात स्त्रियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े हुए वर्गों में से आने लगा है। एक अन्य अध्ययन से पता चला है कि अधिकतर निर्वाचित सदस्य नौजवान तथा मध्य आयु के होते हैं। निर्वाचित सदस्यों का शैक्षिक स्तर हल्का होने की सम्भावना रहती है क्योंकि उनकी बड़ी संख्या अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित होती है। ऐसा स्त्रियों, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों में विशेषकर होता है। अतः यह अनिवार्य है कि उभरते हुए नेताओं के लिये एक प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की जाये।

भाग 4

नगरीय, स्थानीय सरकारों का गठन, कार्य तथा प्रचलन (Organisation, Functions and Working of Urban Local Governments)

प्रथम नगरीय स्थानीय सरकार की स्थापना मद्रास में 1688 में की गई थी, अर्थात् 300 वर्ष पूर्व से भी अधिक। परन्तु भारत में नगरीय प्रशासन की प्रगति बहुत ही धीमी रही है क्योंकि 19वीं शताब्दी के अंत तक यहाँ नगरीकरण लगभग न होने के बराबर था। एक कारण यह भी था कि नगरीय स्थानीय स्वशासन के विकास को अंग्रेज़ों ने कभी गम्भीरता से नहीं लिया था। उहोंने नगरों में स्थानीय प्रशासन स्थापित किये थे केवल सफाई तथा स्वास्थ्य की देख भाल करने के लिये। भारत में स्थानीय शासन के विकास को एक पूर्व अध्याय में विस्तार से दिया जा चुका है, अतः यहाँ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण कार्य संविधान